ऋग्वेद कृष्ण विवर और वर्ण चक्र
(१०-६१)

ऋषि नाभाने दिष्टो मानलः। देवता - विश्वेदेवाः

हमारे आकाश गंगा में मूल नक्षत्र के नजदीक कृष्ण विवर है। यह कृष्ण विवर क्या है, यह पहले मालूम करना होगा। एनसायक्लोपिडीया ब्रिटानिका (१९७७) में दिया हुआ परिच्छेद का मतलब-

जभी तारका कृष्ण विवरकी नजदीक होती है, तभी कृष्ण विवर की उपस्थिती मालूम पड सकती है। क्योंकि यह कृष्ण विवर का अस्तित्व कोई भी उपकरण से मालूम नही पड़ सकता। जब तारका कृष्ण विवर की नजदीक होती है, तो इसीकी किरण कृष्ण विवरके समीप जाती है, उसका तापमान बढ़ जाता है और वह क्ष किरण, गॅमा किरण, आदि तीव्र किरणों के समान दिखाई देती है। लेकिन कृष्ण विवर नही दिख पडता।

श्वार्टस् चाईल्ड के मतों से, तारका श्वेत वामन होने के पश्चात तेजोगोल गुरुत्वाकर्षण से और भी खींचा जाता है, और उसकी आकर्षण शक्ति भी बढ़ जाती है। जब सूरज समान तारका गोल आकर्षण से १.७५ मील त्रिज्या से छोटा गोल हो जाय, तो उसकी आकर्षण शक्ति इतनी बढ़ जायेगी। कि उससे प्रकाश, या तेज भी बाहर नही निकलेगा। उसको कृष्ण विवर कहा जाता है। इस कृष्ण विवर के बारे में।

ASTRONOMY IN CLOUR (1979)

THE EXISTANCE OF SUCH A BIGGAE-REST OBJECT THUS ONLY BE DETECTED, FROM THE IMMENSE GRAVITATIONAL INFLURENCE ON THE OTHER OBJECT NEAR BY. THE EFFECT OF THAT IS TO CREATE A BLACK HOLE IN SPACE, KNWON AS A SINGULARITY.

इस सूक्त के बारे में हमारा गृहीत रहेगा। श्वार्टस चाईल्ड त्रिज्या के अंदर एक कृष्ण विवर है, और उसके बाहर "वर्णचक्र" फैला रहा है। और यह कृष्ण विवर और वर्णचक्र दिन ब दिन समतोल में रहते हैं। ऐसे अवस्था में एक तारका घुमते घुमते वर्णचक्रके परिसर में घुस गयी, और वहाँ समतोल बिगाड डालती रही।

यस्मिन वृक्षे मधु अरूः सुपर्णा
निविषन्ते सुवते च अधिविश्वे।। (१-१६४-२२)

वृक्ष - (वृतं- विस्तारीत होना) यह वर्णचक्र अपने अस्तित्वके लिये विस्तारित होता रहता था।

सुपर्णा - सुपर्णो) गरूड के समान सौंदर्य संपन्न पक्षवाले और बहुत तेज से भ्रमण करनेवाले दो तारकाएँ - हर एक तारका त्रिज्या मध्य को बहुत तेजसे भ्रमण करती है, और इस प्रभामंडल के दो सौंदर्य संपन्न पक्ष रहते हैं। इसीलिए कवीने तारकाको सुपर्ण कहलाया है।

मध मधु धमते विपरीतस्य

(निरुक्त १०-३१)

मधु, कम अधिक जोरसे कद्युका वहन। तारकों के अंतरंग विभागों में अणुगर्भ प्रक्रिया शुरू रहती है, और ऊर्जा प्रारण से उपर उपर चढ़ती रहती है। और आकर्षण से अग्निप्रवाह फिर, अणुगर्भ पकने के लिए उतर जाते हैं। इसीलिए कवीने तारकाको मधु अदः। कयुंको बार बार खाने वाली कहलाया है।

वर्णचक्रके अंदर, तारका घुमती है। (निविषन्ते) और वहाँ स्थिर होने के पश्चात अपने सामर्थ्य से तरंगोंको या चक्रीप्रवाहों को निर्माण करती है। (सुवते)

ऐसी स्थिती मे इस सूक्ती की शुरवात होती है। लेकिन पहले इस सूक्त के बारे में पाश्चिमात्य टीकाकार ग्रिफिथ का कहना देखे -

THIS HYMN AS LUDING OBSERVES BE-LONGS TO THE MOST DIFFICUT, ONE NIGHT ALMOST SAY, MOST "HOPELESS" PIRTIOUS OF RIG-VEDA. IT IS MADE UP OF SEVERAL GOODS WHICH HAS IN NO INTELLEIGABLE CONNECTION WITH ONE ANOTHER.

भारतीय टीकाकारोंने "नाभानेदिष्ट" की कथा दी है।

नाभानेदिष्ट मन का पुत्र था। वह गुरूग्रहमें शिक्षण के लिए गया था। तो उसके दो बडे भाईओंने पिताकी संपत्ती आपस में बांट दिया। जब नाभानेदिष्ट वापस आया तो उसने पिताजीको उसके हिस्सा के लिये पूछा। पिताजी बोले, जाओ, अंगीरस ऋषीने ६ दिन का यज्ञ पुरा किया है। लेकिन ७ वे दिन में क्या करेंगे, यह कोई भी नही जानता, तब जाओ और ७ वा दिनका यज्ञ पूरा करके वापस आओ। वे जो दक्षिणा देंगे,वही तुम्हारा हिस्सा होगा। तो नाभानेदिष्ट यज्ञ पर गया। और यज्ञ पूरा कर दिया। तो अंगीरसने १००० गौ दे दिया। वापस लौटते लौटते रास्ते में रुद्र मिला। वह बोला, "यज्ञ की अंतिम दिनकी दक्षिणा मेरी ही होती है। जाओ, पिताजीको पूछकर आओ।" तो नाभानेदिष्ट घर गया। तो पिताजीने कहा "रुद्र की बात सत्य ही है।" तो नाभानेदिष्ट वापस आया और उसन अपनी १००० गो, रुद्रको दे दी। यह ऊँचाई देखकर रुद्र खुश हुआ। और उसने १००० गौर नाभानेदिष्ट को ही बक्षीस दी।

इस कथाके रूपक मे वैज्ञानिक दृष्टिकोण से थोडा सोचना होगा। हमे मालूम है कि ६ मन्वंतर पूरी हुई है और ७ वा मन्वंतर चल रहा है। मनू के दो जेष्ठ पुत्र माने रूर्पिल दीधिके का गाभा और उसकी सर्पिल। इन दोनो दीधिका की सब घटनाओं का हिस्सा आपसमें बाट दिया। और नाभानेदिष्ट को (नाभी के अत्यंत समीप रहनेवाले घटकको) ७ वा मन्वंतर कैसे शुरु होगा यह देखना पडा। रुद्रने ७ वा मन्वंतरके शुरुमें सब दूर प्राणिमात्रो की उत्पत्ति करने के लिए अनुमती दी। इसलिए इस सूक्त का ऋषि दिया है। नाभानेदिष्टो मानवः। इसलिये इस सूक्त का कृष्ण विवर और वर्णचक्र के बारेमें हम विचार कर सकते हैं।

(क्रमशः)

श्री. मा. भ. पन्त, पुणे

ऋग्वेद कृष्ण विवर और वर्ण चक्र

(गतांक से आगे)

मैने इस सूक्त के ५ भाग कल्पित किये हैं। पहले ४ ऋचाओं में जब तारकाकी मदत मिलने लगी, तब वर्ण चक्रकी उक्तियों की कैसी वृद्धी होने लगी, इसका वर्णन है-

इदमित्था रौद्रं गूर्तवचा ब्रम्हक्रत्वा शच्यामन्तराजौ।।
क्रान्त यदस्य पितरा महनेष्ठाः पर्षत्यक्यं अहन्ना सप्त होतृन्।।१।।

इदम्।इत्थां। रौद्रम्। गूर्तवचाः। ब्रहनं। क्रत्वा। शच्याम्। अन्तः आजौ।। क्राण।यत्।अस्य।पितरां।मंहनेस्थाः।पर्षत्। पक्थे। अहन्। सप्त। होल्हन्।।१।।

अन्वय- आजौ अंतर, शच्यां ब्रहन क्रत्वा
इदं रौद्रं इत्था गूर्तवचाः । यत् अस्य पितरौ
मंहनेष्ठाः क्राणा पर्षत्। सप्त होतृन् पक्थे अहनि आ (पर्षत्) ।।१।।

आजौ अंतर - कृष्ण विवर और वर्णचक्र इन दोनों मे चला हुआ गतिजन्य चैतन्यको समतुलित रखने के वास्ते चले द्वंद्व में। शच्यम्- तारके से मिला हुआ शक्तियुक्त मदतसे। ब्रहनक्रत्वा- चले हुवे यज्ञ को अधिक सामर्थ्य संपन्न किया गया। इस कारण से, इंद्र रौद्रम - जो भीतिप्रद ध्वनि निकल रहे थे, इत्था गूर्तवचाः । वे अतीव भयप्रद हुए। यत अस्य - उससे, उसवर्णचक्रके पितरौ- माता और पिता। पिता - सब घटनाओं को निश्चित रूप से चैतन्य प्रदान करना, इसका महत्वपूर्ण कार्य समझा जाता है (पा-पाई) अन्न माता- जितनी चैतन्य शक्ति उसी मिली होंगी, उसकी प्रदर्शन करनेवाली (मा-प्रदर्शित करना, मापन करना। महंनेष्ठाः - और, इन दोनों को सहायता देनेवाले, अपने अपने चैतन्य प्रदान करने के कार्य मे स्थित प्रवाह। काणा पर्षत - वे अपनी अपनी चैतन्य शक्ति में बाढ करते रहे। पक्थे अहनि - और इनोंके अतीव दीप्तिमान कालमें, आपर्षत् - इतनी चैतन्यशक्ति दी, किडसे पराभूत करना मुष्किल हो गया। सप्त होतृन्- सात प्रकार के यज्ञ प्रदीप्त रखनेवाले।

ये यज्ञ प्रदीप्त रखनेवाले ऐसे होंगे-घर्षण, ध्वनि, किरणों का समुच्चय, प्रवाह, चक्री, प्रवाह, विद्युत कर्षुकीय शक्ति और तेज वायु। ये सातों भी यज्ञ प्रदीप रखनेवालों की चैतन्य शक्ति बढाने लगे।

भावार्थ - कृष्ण विवर और वर्णचक्र, इन दोनों मे गतिजन्य समतोलके लिये द्वंद्व चल रहा था। ऐसे कालमें एक तारका वर्णचक्रके परिसर में घुस गयी, और वर्ण चक्रके शक्तियों को बढाने लगी। इसका परिणाम ऐसा हुआ कि, तीव्र ध्वनि अधिक तीव्र होने लगे। चैतन्य दाता पिता और प्रदर्शन कर्त्रीमाता, दोनो भी अधिकाधिक सामर्थ्य संपन्न होने लगे। और यज्ञ प्रदीप रखनेवाली सात शक्तियाँ इतनी सामर्थ्य संपन्न हुई कि मुझे कोई भी शक्ति पराभूत न कर सकी।।१।।

स इददानाय दभ्याय बन्वन् च्वानः सूदैद मिमीत वेदनि्।।
तूर्वद्याणो गूर्तवचस्तमः क्षोदो न रेत इत ऊति सिञ्चत्।।२।।

सः।इत्।दानाद्य। दभ्याय। वन्नन्। च्यववनः। सूदैः। अभिमीत। वेदिम्।। तूर्वद्याणत्। गूर्तवचः तमः। क्षोद। न । रेतः । इतिः अति सिंचत्।।२।।

अन्वय - सच्यवग्नः दानाय इत् दभ्याय वन्वन् सूदैः अभिमीत । गूर्तवचस्मः तूर्वयाणः। वह चैतन्य युक्त सतत कार्य करने वाला दानाद्य।" मै आत्मसमर्पण करनेके इत् दभ्याय। सच तो उसकी वंचना करने के लिये। वन्वन् - असमतंतको सौंदर्य संपन्न करते करते, सूदैः - खुद के अतीत सुंदर बुंदो से, उसने वेदिं अमिमीत - कृष्ण विवर की सीमाका मापन कर दिया। यह जो चतन्यमय घटक था वह, गूर्तवचस्तमः - सर्वाधिक भयप्रद ध्वनि प्रसृत करनेवाला, तूर्वयाणः- और आसमंतके घटनाओं को अतीव शक्ति संपन्न करनेवाला था। क्षोदः न रेतः - प्रचंड खडकों का चूर्ण चल रहा है, ऐसे भयानक ध्वनिवाले अग्निबूंदों से, उसने, इत ऊति सिंचत् - बहुत काल तक सिंचन किया ।।२।।

भावार्थ - उसमें एक सतत कार्य करनेवाला चैतन्ययुक्त घटक था वह कृष्ण विवर के दिशा से चलने लगा। उसने ऐसे दिखाया कि, वह कृष्ण विवर में आत्मसम्पर्ण करने के वास्ते चल रहा है। लेकिन यह वंचना थी। वह इतना सामर्थ्य संपन्न था कि उसने जाते जाते आसमंत सौंदर्य संपन्न और चैतन्ययुक्त किया। और जब वह कृष्ण विवर के समीप गया, तो उसने अपने सौंदर्य संपन्न बूंद से कृष्ण विवरकी सीमाकी परीक्षा की। और उसने अपने अग्निबूदों से, प्रचंड खडक का चूर्ण चल रहा है, ऐसे भयानक ध्वनि कर दिये। यह भयानक ध्वनीने आसमंत को कृष्ण विवरके अंदर जानेको मना किया।।२।।

मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपा शय्या वनुथो द्रवन्ता।।
आयः शर्या भिसतृ विनृम्णो अस्याश्रीणीता दिशं गभस्तौ।।३।।

मनः। न। येषु। हवनेषु। तिग्मम्। विपः। शच्यां। वनुथः। द्रवन्ता ।। आ।यः।शर्याभिः। तुविपृम्णः। अस्य। अश्रीणीत। आदिशम्। गभस्तौ।।३।।

अन्वय - येषु हवनेषु मनः न तिग्मं शच्या विपः वनुथः द्रवन्तौ! यः तुविनृम्णः शर्याभिः अस्य आ अश्रीणीत। अदिशं गभस्तौ।।३।।

येषु हवनेषु। वर्णचक्रके वातावरण में यज्ञीय ज्वालाएँ अधिक दीप्तिमान होने के वास्ते आहुतियां दिया जाते थे। उनमें, तिग्मम्। अतीव प्रक्षुब्ध । मनःन। मन होने के कारण, जैसे विचार प्रणालियाँ मस्तक में भ्रमण करती रहती हैं, वैसे हि शच्या! अतीव शुक्तियुक्तं प्रवाहों ने। वनुथा द्रवन्तौ। बहुविध ईर्षासे जल्दी बहनेवाले दो प्रवाहको - एक अतीव तेजयुक्त और दूसरा तपमान कम होने का कारण काला दिखाने वाला, ऐसे दोनो भी प्रवाह को प्रक्षुब्ध किया यः तुविनृम्णः। उनमें एक अतीव शक्तियुक्त और तेजसे दौडनेवाला था। वह तो। अस्य शर्याभिः । आपनी अतीव प्रभावी अस्त्र के । समान - गती से आ अश्रिणीत । दूसरे में घुस गया। आदिशं गभस्तौ। और दोनो भी, प्रवाह, तेजयुक्त होने के वास्ते कोशिश करने लगे।।३।।

भावार्थ - तब ऐसी भयानक हलचल मचाई कि, प्रक्षुब्ध मस्तिष्क में जैसी विचारों की घुसाई। इससे घटनाओं के दीघित् रखनेवाला यज्ञ अतीव तेजयुक्त हुआ, और उसने सर्व दूर चमकिन प्रवाह और साथी साथ कृष्ण प्रवाह, दोनों भी शुरू किया। उसमें एक तेजसे दौडनेवाला भी प्रवाह था। वह दूसरे प्रवाहों में घुस गया ।।३।।

चौथी ऋचा में कुछ महत्वपूर्ण शब्द आये हैं -

अश्विना । (अश्विनौ)। ऋग्वेद में ये देवताएँ द्वि वचन में ही आते हैं। इसलिये उन्ही के संबंधी जो क्रियापद या विशेषण आते हैं वे भी द्विवचन में रहते हैं। इनमे, अश् - व्याप्त करते हैं। और दोनो भी साथ साथ उत्पन्न होते हैं।